उत्तर आधुनिक युग में कथा साहित्य के बदलते सामाजिक सरोकार

जगपाल सिंह यादव,

ज्वालामुखी मंदिर के पास,
रानीगंज मोहल्ला पन्ना–जिला,पन्ना (म.प्र.)

सैटेलाइट की गति से दौड़ते हुए इस वैज्ञानिक, युगीन क्रांति से विकसित पूँजीवादी व्यवस्था ने जीवन की जटिलता को कई गुना बढ़ा दिया है। ऐसे वातावरण में सामाजिक जीवन की नित्य–नवीनता, परिवर्तनशीलता एवं नवीन मूल्यों की पुनर्स्थापना में उपन्यासकार कृत संकल्प हैं। इक्कीसवीं सदी समाज में नैतिक मूल्यों का निरन्तर क्षरण ही इन सबका मूल कारण है। बदलते जमाने के साथ बदलते हुए पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों और मान्यताओं को कैसे बचाया जा सके ये परिस्थितियाँ एक नये विमर्श को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में मानव जीवन एवं समाज–जीवन की जटिलता को उसके यथार्थ एवं समग्र रूप में सम्प्रेषित करने के लिए **कथा साहित्य** सर्वथा उपयुक्त एवं संवाहक एवं सशक्त माध्यम के रूप में प्रयत्नशील है।

वर्तमान में वैश्वीकरण और उत्तर आधुनिकता ने स्त्री शोषण के नये आयाम खोल दिये हैं, मुनाफे का बाजार पुरानी रूढ़ियों को फिर से जमीन देने लगा है। स्त्री सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग और सामान बेचने में सहायक बना दी गई है। उत्तर आधुनिकता और ग्लोबलाइजेशन में जहाँ आर्थिक सबलीकरण हुआ है तो वहाँ मर्यादा के दोहन का पट्टा भी लग गया। विज्ञापन जगत स्त्री की छवि को उत्तेजित करता मॉडल, बनाने पर जुटा है क्योंकि वर्तमान में शक्तिशाली ही जीने का अधिकारी है। आज डार्विनवाद नये रूप में आ रहा है। बाहुबल का स्थान ज्ञान ने ले लिया है। आज ज्ञान ही शक्ति है। ज्ञान की कसौटी ही बाजार है।

डॉ. शिवकुमार मिश्र अपने लेख 'रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार' में' इस सत्य को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं – ''आज उत्पाद हैं, उपभोक्ता हैं, वस्तुएँ हैं और वस्तुओं में बदलता आदमी और उसकी आदमियत है। .....टी. वी. चैनलों पर चौबीस घंटे छाये रहने वाले विज्ञापनों पर एक निगाह डालिए – दैहिक भौतिक सुखभोगवाद के साधनों का प्रचार करते बच्चे–बूढ़े, किशोर–जवान, स्त्री–पुरूषों की एक भीड़, उनके हाव–भाव, उनकी भाषा, उनका हर ढंग और ढब जो उनका नहीं, उन लोगों के द्वारा तय किया गया है जो उनका इस्तेमाल कर रहे हैं। अपने–अपने उत्पादों को ग्राहक और उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिये और एक निगाह उन पर भी डालिए जो दूरदर्शन के पर्दे पर टकटकी लगाये उन्हें और उनके द्वारा विज्ञापित उत्पादों को ललचाई नज़रों से देख रहे हैं, अपने भाग्य को सराह रहे हैं अथवा उस पर झुँझला रहे हैं जो उपभोक्ता बनाने के लिए आतुर हैं, ये लोग हमें अपने आस–पास, अपने घरों के भीतर भी मिल जाएँगे।.....भोगना ही आज के युग की सबसे प्रधान क्रिया है। होड़ मची हुई है। बस दम होना चाहिए आप में।.....भोग की स्पर्द्धा में वह अपना सब कुछ, यहाँ तक कि इंसानियत तक को दाव पर लगाने को तैयार है।.....एक अंतहीन यात्रा है.....बदहवास, बिना इस बात पर विचार किए कि उनकी इस दाग का कहीं कोई अंत भी है या नहीं। रोज–बरोज नये–नये उत्पाद और उन्हें पाने को आतुर भीड़।'' साहित्य में समाज के हृदय की धड़कनें सुनाई देती हैं। उत्तर

आधुनिकता में अविश्वास, निराशा और विखंडन तथा बिखराव की वास्तविकता दिखाई देती है। सुधीर पचौरी उत्तर आधुनिकता के विमर्श में कहते हैं – ''उत्तर आधुनिकता उन तमाम समग्रतावाद, साकल्पवादी व्यवस्थाओं की कमियों और पक्की सांस्थानिक बाउंडरीज की कमियों, कमजोरियों के बारे में सचेत करती है। उत्तर आधुनिकता के अन्तर्गत आने वाले वृत्तान्त यथार्थ की 'पेरोडी' खींचते हैं। वे ऐसा आत्मबिम्ब बनाते हैं जो न केवल एक यथार्थ को कहे, बल्कि कहते हुए उसे चुनौती भी दे। उसके पेश्टीच (पिस्टी या कतरन साहित्य) साहित्य और गैर साहित्य वृत्तान्त की सीमाओं को तोड़ देते हैं। यहाँ इतिहास, आत्मकथा जीवनी सब मिश्रित हो उठता है। यहाँ साहित्य की विधाएँ टूट जाती है, उनके पक्के रूप टूट जाते हैं। वे शाश्वत, मुकम्मल और शुद्ध नहीं रह पाते।'' इस प्रकार कथाकारों ने बाजारीकरण के प्रभाव और उसके दुस्परिणामों की ओर संकेत दिया है। उत्तर आधुनिकता ने नये आयाम खोल दिए हैं। उत्तर आधुनिकता और ग्लोबलाईजेशन में जहाँ आर्थिक सबलीकरण हुआ वह मर्यादा के दोहन का पट्टा भी लग गया। कुण्ठाओं में जीती हुई स्त्री के लिए एक दृष्टि भी दी है।

वर्तमान भारतीय परिवेश की मुख्य विशेषताओं के पहचान के क्रम में यह तथ्य सर्वविदित है कि राजनीतिक क्षेत्र में मूल्यों का पतन, स्वार्थपकर प्रवृत्ति, प्रशासन में भ्रष्टाचार और घूसखोरी, राजकीय धन के दुरूपयोग के कारण गरीबी और अमीरी में घोर असमानता का चलन हुआ है। असंतुलित जीवन प्रक्रिया और मानसिक द्वन्द्व के कारण व्यक्ति के अन्तर्सम्बन्ध काफी कमजोर पड़ गये हैं। नारी वर्ग में नयी चेतना का उदय धीरे–धीरे हो रहा है, किन्तु वह स्वावलम्बन से अधिक सुविधा प्राप्ति की दिशा में उन्मुख है। दलित और पीड़ित वर्ग का नेतृव्य अपनी प्रतिबद्धता के प्रति वफादार नही साबित हुआ। कुल मिलाकर देखा जाये तो ऊपरी प्रगति की आडम्बर पूर्ण उद्घोषणाओं के बावजूद मानव समाज के भीतर ही भीतर काफी खोखला, आत्म केन्द्रित और मूल्यहीनता की ओर बढ़ते हुए आत्मघाती पथ की तरफ अग्रसर है। धन की कीमत ने मनुष्य और मनुष्यता को काफी हीन बना दिया है। किन्तु आज भी इस विषाक्त वातावरण में बहुत थोड़ी मात्रा में ही सही मूल्य निष्ठा उदारवादी, समष्टि कल्याणकामी शक्तियाँ हरिवंश राय बच्चन की जुगनू की तरह अपनी कमजोर सांसों से इस अंधेरे के विरूद्ध संघर्ष में समृद्ध हैं। आस्थिरता से आक्रान्त मानव–जीवन की विविध भावभंगी, उसकी समस्याएं एवं उनकी परिव्याप्तता के चित्रिकरण में हिन्दी उपन्यास अपने दायित्व बोध के साथ निरन्तर अग्रसर है। हिन्दी उपन्यास बदलते सामाजिक जीवन निरन्तर क्षरण होते नैतिक मूल्यों को चित्रित कर किस प्रकार बीमार, संकीर्ण और क्षुद्र मानसिकता को उदात्त और मानवीय बनाती है, इन तमाम बिन्दुओं पर प्रकाश डालना ही इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है।

आधुनिक मानव जीवन की संश्लिष्ट विविधता और उसकी विश्रृंखल विसंगति की बहुस्तरीय उलझन की सशक्त अभिव्यक्ति में साठोत्तरी उपन्यास सक्षम है। इस सन्दर्भ में डॉ0 पारूकान्त देसाई जी के मत अवलोकनीय है कि–"आधुनिक विज्ञान की समग्र चेतना, मार्क्स, एंजिल, लेनिन, माओ, गांधी, सार्त्र, कामू जैसे प्रखर विचारकों का गहन चिन्तन तथा फ्रायड, एडलर, जुंग, पावलोव, एलिड, मैकडूनल प्रभृति मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों की शान ने आधुनिक उपन्यासकारों की कल्पना की धार को अधिक प्रखर बनाया है। अतः एक ओर जहाँ वह सामाजिक, आर्थिक विषमता की विभीषिका से पीड़ित निम्न दलित सर्वहारा वर्ग की मानवीय चेतना को उद्बुद्ध करता है, वहाँ दूसरी ओर वह मनुष्य के अवचेतन के जटिल गह्वरों में प्रवेश कर उनकी गुत्थियों को समझने–समझाने का प्रयास भी कर रहा है।"[1]

उपन्यास आधुनिक साहित्य की सबसे प्रिय एवं सशक्त विधा है। उपन्यास में मनुष्य के व्यापक जीवन की यथार्थता, मानसिक भावों, विचारों का अंकन तथा मन की असीम गहराइयों की नाप–जोख के साथ परिवर्तन शील समाज के विविध आयामों व मानवीय द्वन्दों का प्रमाणिक चित्रण करने की अद्‌भुत क्षमता है। ई0एम0फास्टर के शब्दों में कहें तो– "उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है।"[2]

इस क्रम में 'अलग–अलग वैतरणी', 'शहर में घूमता आइना', 'जल टूटता हुआ', 'धरती धन न अपना', 'मुर्दाघर', 'सफेद मेमने', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'महाभोज', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'आपका बण्टी', 'काला जल', 'छाया मत छूना मन', 'नदी फिर बह चली' आदि रचनायें हमारे मन को मथकर मानवीय दर्द से सराबोर कर देती है। इन उपन्यासों में मानवीय प्रवृत्तियों की विविधता के साथ अपने समय और समाज की चेतना को उसकी समग्रता में प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का उद्‌घोष दिखायी पड़ता है। इसी कारण ऐसे उपन्यास अपनी विश्वसनीयता के कारण अपने समय का साक्षी बन सकने में समर्थ प्रमाणित होते हैं उनके भीतर से सारा समय समाज झांकता हुआ प्रतीत होता है।

आधुनिकता बोध के कारण भारतीय युवकों ने परम्परागत मान्यताओं और रुढ़ नैतिकता के प्रति विद्रोह करना शुरू किया। वे परम्परागत मान्यताओं के जड़ बन्धन में जकड़े रहना नहीं चाहते। नैतिक प्रतिमान व जीवन मूल्यों में परिवर्तन के कारण सम्बन्धों में बदलाव आना स्वाभाविक है। आज संयुक्त परिवार बड़ी तेजी से बिखरता जा रहा है। युवा पीढ़ी स्वभावतः पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता की मांग करने लगी है, क्योंकि उनके समक्ष परिवर्तनशील समाज और मूल्यों के मध्य अपने अस्तित्व का प्रश्न प्रमुख हो गया है। युवा पीढ़ी इस स्थिति के लिए तैयार नहीं है कि पारिवारिक मूल्यों के चलते वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण न कर पायें। 'नदी फिर बह चली' का जगलाल शहर में जाकर ड्राइवर बन गया है। वह अपनी सारी कमाई शहर में ही उड़ा देता है और पत्नी के समझाने पर कहता है– "घर में आखिर मेरे हिस्से में क्या खर्च आता है, एक तुम हो और कौन? भइया के तीन–तीन बच्चे हैं। जनाना, फिर अपने अलग। कहाँ वे पाँच कहाँ तुम अकेली। मेरे खर्च का सवाल ही नहीं उठता।"[3]

इसी उपन्यास के बाबू कैलाशलाल का परिवार इन नयी परिस्थितियों के कारण ही टूटकर अन्ततः बिखर जाता है। अतः 'अतिथि देवो भव' की जगह–अतिथि तुम कब जाओगें' ने स्थान ग्रहण कर लिया है। गाँव टूट रहे हैं, परिवार का अर्थ बीबी–बच्चे से ही लिया जाता है।

पश्चिमी जीवन मूल्यों का प्रभाव गाँवो की अपेक्षा शहरो में अधिक है अतः नगरीय परिवेश में पुराने सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा। बढ़ते हुए व्यक्तिवाद ने स्त्री–पुरूष की अहं वृत्ति को अत्याधिक उत्तेजित किया है। जिसके परिणाम स्वरूप दाम्पत्य जीवन मे दायरे पड़ रही है और परिवार टूटते जा रहे है। इसमें बच्चों की स्थिति त्रिशंकु सी होती जा रही है। 'आपका बंटी' उपन्यास अत्याधुनिक सुशिक्षित पति–पत्नी के अहं के टकराव तथा तनावों से उत्पन्न स्थितियों के बीच सम्बन्ध विच्छेद का दस्तावेज है। "जहाँ कुछ आधुनिक कहे जाने वाले उपन्यास आलोचना की बैसाखियो पर खड़े हैं, वहाँ अपनी सम्पूर्ण आधुनिकता के बावजूद यह कृति अपनी सादगी एवं अनयासित शिल्प के द्वारा एक विशिष्ट स्थान बनाये हुए है।"[4]

आज की अहम् समस्या व्यक्ति के अहं का विस्तार व्यक्तिवादी–भौतिकवादी चिंतन ने स्त्री–पुरूष दोनों के अहं को इतना उग्र व प्रखर बना दिया है कि व्यक्ति धीरे–धीरे इतना अमानवीय होता जा रहा है कि उसे अपने बच्चे

का भी ख्याल नही रहता। एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए वे कुछ भी कर सकते है।

उत्तर आधुनिकता ने साहित्य, सामाजिक सैद्धान्तिकी तथा राजनीति के सभी क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला है। आज वैश्वीकरण के युग में पूरा विश्व सिमट कर गाँव बन गया है। टी.वी. चैनलों और विज्ञापन के प्रभाव से एक नई संस्कृति का जन्म हो चुका है। उत्तर आधुनिकता ने जो मूल्य दिये हैं वे पश्चिम की अतिविकसित औद्योगिक सभ्यता और समाज के भी मूल्य हैं। उसे विकसित करने में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की निर्णायक भूमिका रही है। उत्तर आधुनिकवाद वैश्विक संस्कृति के बहुलवादी चरित्र पर बड़ा बल देता है और उसकी स्वायत्तता की रक्षा का संकल्प दोहराता है। .....व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विज्ञापन एजेंसियों ने जिस उपभोक्तावाद को जन्म दिया उसकी कल्पना वर्तमान में ही की जा सकती थी। कम्प्यूटर–संस्कृति ने व्यक्ति और समाज की प्राथमिकताओं को बदल डाला। उसने मानवीय संभावनाओं और संवेदनाओं और साहित्यविहीन ऐसे यंत्रमानव रोबोट की रचना की जिसने प्रबोधन काल के मानववाद की पूरी संकल्पना को ही धो डाला। उत्तर आधुनिकता इन सभी परिवर्तनों को दर्शाता है। उसके दार्शनिक अभिप्रायों की झलक उसकी सैद्धांतिकी में देखी जा सकती है।[5]

उत्तर आधुनिकता की प्रवृत्ति सन् 1880ई0 से ही चित्रकता में प्रदर्षित होती रही है। सन् 1968 ई0 में रोला बार्थ की पुस्तक 'द डैथ ऑफ द ऑथर' प्रकाशित हुई, और इसी समय फ्रेंक कमोर्ड ने आज के युग को 'अंत के अहसास' का समय घोषित किया। उत्तर आधुनिकता जर्मनी में नीत्षे और हाइडेगर से आरम्भ होता है। फ्रांस में लियोतार, रोलांबार्थ, दरिदा से होता हुआ अमेरिका में पहुँचा फिर अमेरिका के व्याख्यानों के द्वारा हमारे देश भारत में भी इसकी गूंज ध्वनित होने लगी। ''मिशेल फुको ने मार्क्स को 'बेदखल' करने की कोशिश की वहीं उत्तर आधुनिकता के एक और चिन्तक 'फ्रांसीसी फ्रायड' जॉक लाकों ने फ्रायड को 'अपदस्थ' करने का प्रयत्न किया। लाकों ने संरचनावाद और मनोविज्ञान के समावेश से संरचनावादी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की नींव रखी। लाकों ने भाषा और अवचेतन सस्यूर के संरचनावाद भाषा विज्ञान और फ्रायड के मनोविष्लेषण को एक सम्मिश्रित पैटर्न प्रदान करने का प्रयास किया। फ्रायड की 'डिमेडिकेशन' की प्रक्रिया तो पहले से ही शुरू हो चुकी थी। उसे क्लिनिक की चार दीवारी से भी मुक्त करके समाज के विस्तृत दायरे में लाने के प्रयास शुरू हो गये। अब फ्रायड को उत्तर आधुनिकतावाद के युग में बहाल करते हुए कहा गया कि यदि फ्रायड ने अवचेतन की भाषा का अन्वेषण किया है, तो सस्यूर ने भाषा के अवचेतन से परदा उठाया है।''[6] आधुनिकता हमें जहाँ मूल्यों में परिवर्तन, इतिहास के अंत, सभ्यताओं से टकराव एवं नयी सभ्यता के अस्तित्व पर खड़ी हुई दिखाई देती है। आज हम देख रहे हैं समाज के घटक तत्वों में गहनतनाव, निराशा, अस्थिरता, बेचैनी, नैतिक मूल्यों का न रह जाना, आपसी सम्बन्धों में कटुता को बढ़ावा मिल रहा है। सारे मानवीय रिस्ते तार–तार हो रहे हैं। उत्तर–आधुनिक समय में स्थितियाँ उलट–पलट हो गयी हैं। अर्थवाद के सामने समाजवाद अपने व्यावहारिक धरातल पर असफल होता दृष्टिगोचर हो रहा है। ''उत्तर–आधुनिकवाद तो वस्तुतः उस मोह भंग को उजागर करता है, जो कि हमारे समय में समाजवाद की अवधारणा की विफलता से पैदा हुआ है, साथ ही ज्ञानोदय से जागी उम्मीदों पर पानी फिरने से और नतीजन व्यवस्था के सामने बुद्धिजीवी के घुटने टेकने से।''[7] इजाज अहमद अपनी पुस्तक 'इनथियरी' में साहित्य को समाज का चिन्ह मानते हैं और उत्तर आधुनिकवाद को राष्ट्रवाद मानकर चलते हैं। पूँजीवाद का वैश्विक आक्रमण होने से संपूर्ण विश्व गाँव में सिमटा है।

''आज का दौर उत्तर आधुनिकता का है। उत्तर आधुनिकता विचारों की पूर्णता में नहीं विखण्डन में विश्वास करती है। इसी कारण एक शब्द के अनेक अर्थ, अनेक चैनल, अनेक एकता केन्द्र और अनेक पार्टियाँ हो रही हैं। प्रायोजित या प्रस्तुत यथार्थ मिथ्या होता है और आशय कुछ और ही। अर्थात् जमाना संशय का है। उत्तर आधुनिकता का मूल तत्व संशयवाद या निषेधवाद ही है। कोई वस्तुगत सत्य नहीं, कोई मूल्य नहीं, आदर्श नहीं, जिसके आधार पर जीवन को सुलझाया जाए। आज की तारीख में पूरा विश्व अविश्वास में जी रहा है। उसके सामने एक बड़ा संकट विश्वास हीनता का भी है।''[8] मार्क्सवादी के अनुसार समाज का आधार आर्थिक ढाँचा होता है जिस पर समाज का निर्माण हुआ है। ''बुर्जुआ वर्ग ने विश्व बाजार के शोषण के जरिए हर देश में उत्पादन और उपभोग को वैश्विक 'कास्मोपोलिटन' चरित्र में दिया है। प्रतिक्रियावादियों को लज्जित करते हुए, उसने उस राष्ट्रीय आधार को नीचे से खींच दिया है, जिस पर उद्योग खड़े थे। सभी पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योग या तो नष्ट किए जा चुके हैं या रोजाना खत्म किये जा रहे हैं। उनकी जगह नए उद्योग पैदा हो रहे हैं, जिनकी शुरूआत सभी सभ्य राष्ट्रों के लिए जीवन मरण का सवाल है, ऐसे उद्योग जन्म ले रहे हैं जो अपना देसी कच्चा माल इस्तेमाल नहीं करते, बल्कि दूर–दराज से लाए कच्चे माल का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे उद्योग बन रहे हैं जिनके उत्पादन देश में ही नहीं, धरती के हर कोने में उपयोग किए जाते हैं। पुरानी जरूरतों की जगह जिन्हें देश के उद्योग पूरा करते थे, नई जरूरतें पैदा की जाती हैं, जिनके लोभ के लिए अन्य वातावरण तथा दूर के उत्पादन चाहिए। पुराने जमाने के स्थानीय तथा राष्ट्रीय एकान्त तथा आत्मनिर्भरता की जगह, हर क्षेत्र में नया समागम पैदा होता है, सार्वभौमिक अन्तर्निभरता पैदा होती है। जैसे यह भौतिक क्षेत्र में होता है बौद्धिक क्षेत्र में भी होता है। विभिन्न राष्ट्रों के अपने–अपने बौद्धिक सृजन सबकी सम्पत्ति बन जाती है। राष्ट्रीय पक्षपात और संकीर्णता अधिकाधिक असम्भव होती जाती है और असंख्य राष्ट्रीय और स्थानीय साहित्यों के बीच एक विश्व–साहित्य पैदा होता है।''[9]

हमारे आर्थिक एवं सामाजिक नैतिक मान्यताओं में आये इस परिवर्तन ने व्यक्ति और वस्तु के आपसी संबंधों को भी बदल दिया है। 'उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद' में प्रो. सुधीष पचौरी लिखते हैं – थोड़ी कला, थोड़ा खेल, थोड़ा स्वास्थ्य, थोड़ा आनंद, थोड़ा दुख..... उपभोक्तावाद समाज की इस थोड़ी सांस्कृतिक जटिलता से रहित होता है। .....थोड़ा, थोड़ा व्यक्ति इन्हीं में एक थोड़ा चुनता है। यही उपभोक्ता समाज है। इस थोड़ी संस्कृति को सुरेन्द्र वर्मा ने 'मुझे चाँद चाहिए' में व्यक्त किया है। इस उपन्यास की नायिका वर्षा प्रसन्न है कि वह अपने ग्लैमर की दुनिया में बहुत आगे बढ़ी और सरहदों को पार कर ग्लोबल हो गयी है। लेकिन अंत में वह महसूस करती है कि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व केवल 'देह और वस्तु' से आगे एक कदम भी नहीं बढ़ा है। जब भीषण यथार्थ की सच्चाईयाँ सामने आती हैं तो समाज में अपने आपको मिसफिट समझ आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है। अल्बर्ट कामू कृत 'कलिगुला' के अंत में भी सब कुछ पा लेने की खुशी के बाद भी एक असम्पूर्ण स्थिति का अहसास होता है। 'अरे जानती हो तुम, कथ्य बाकी बचा है..... देखो पास आओ, देखो। कलिगुला .....' यानी बाजार। आज मानव इसी भ्रम का शिकार हुआ है पाने की लालसा में वह प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहा है। भ्रम के टूटने पर सत्य का ज्ञान होने पर वह विघटित हो जाता है। मूल्यों के अभाव में निरीह पड़ जाता है। इस सदी के रचनाकारों ने समाज में अपना पैर पसार चुकी उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ व्यक्ति के बीच पनपने वाले सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया है। अलका सरावगी की रचना 'दूसरे किले में औरत' में लोग औरत को

वस्तु बनाकर दिखाने में उद्धत हो गए हैं। यहाँ स्त्री भी शामिल हो चुकी है। इसी क्रम में 'जयनन्दन' की 'प्रोटोकाल' की नायिका ज्यूसी अपने जिस्म बेचकर अपने ग्लोबल पति के उपभोक्ता संस्कृति के तहत नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में नई परिभाषायें देने लगी है। हमारे देश में पाश्चात्य–सभ्यता की घुसपैठी और मॉडल दिखने की वांछा ने हमारे सम्बन्धों को तार–तार कर दिया है। पारिवारिक सम्बन्ध टूटने के कगार पर हैं। यथार्थवादी युग में मनुष्य मानवता से सम्बन्ध तोड़कर अर्थ से जुड़ने में लग गया है। विक्रेता और ग्राहक के स्तर पर हमारे सामाजिक सम्बन्ध पहुंच चुके हैं। प्रियदर्शन मालवीय 'प्रेम न हाल बिकाय' में बाजार के दबाव में जी रहे युवक 'मजहर खाँ' और युवती 'सोनी' के मध्य का प्रेम अनायास ही बाजारवादी तंत्र के ढाँचे में ढलता है। गिरिराज किशोर 'उसका बीजमंत्र' कहानी में 'भौतिक उपभोक्ता संस्कृति के 'बीजमंत्र' को अत्यन्त गम्भीर स्तर पर खोलते हैं। इसी संदर्भ में संजीव की 'नस्ल' कहानी का प्रतिभाशाली नवयुवक, बाजार और बाजारवाद द्वारा सिर्फ उपयोग के लिये खरीदा जाता है। 'कैरियर' की जद्दोजहद में इस खरीद फरोख्त के चलते वह युवक न जाने कब अपने रिश्तों से ही विमुख होने लगता है यही नहीं वह 'हाइपरटेंशन' का रोगी बन जाता है। 'नस्ल' कहानी आज के आपाधापी के जमाने में मनुष्य के मानवीय अवदान का मूल प्रश्न बड़ी शिद्दत से उठती है। बाजारवाद के नकारात्मक पहलुओं को भी कहानी बड़े अर्थपूर्ण ढंग से उठाती है।[10]

प्रसिद्ध कथा लेखिका मृदुला गर्ग 'कलि का सत' में पौराणिक पात्रों की मानसिकता को उत्तर आधुनिकतावादी विचारों के परिवेश में दिखाती नजर आती हैं। पौराणिक पात्र भरत और उर्मिला आधुनिक पीढ़ी के वारिस के रूप में आते हैं। इनमें पर्यावरण और संस्कृति की सुरक्षा के नाम पर जंगलों को अस्तित्वविहीन करके गार्डन, पेप्सी फाउंटेनों और रेस्टोरेंटों आदि का विस्तार बताया है। पर्यावरण आज की सुपर बिकाऊ चीज है। कथाकार सुरेन्द्र वर्मा, उदय प्रकाश, मनोहर श्याम जोशी आज की सच्चाई का नकाब हटाते हुए बाजारू ताकतों द्वारा स्त्री के पतन की कहानी को भी कहते हैं। आज फ्री सैक्स, प्रेम एवं चारित्रिक संकट के लिए जिम्मेदार पाश्चात्य संस्कृति से हमारा युवा वर्ग भ्रमित हो गया है। विश्व बाजार की दुनिया बड़ी बेरहम है। ऐसा असंवेदनशील क्रूर समय इस सदी में पहले कभी नहीं था, बाजार के नियम हमारे सामयिक मूल्यों पर हावी हो रहे हैं। बाजार में सारी मानवीय संवेदनाएँ अनजाने आहिस्ता आहिस्ता बाजार की संवेदनाओं में तब्दील होने लगी हैं। जो कुछ है, सब बाजार में है। बाजारीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मानवीय मूल्य समाप्त हो गये हैं, बाजार के नियम हमारे सांस्कृतिक मूल्यों पर हावी हो रहे हैं। बाजार ने जितने फैसले स्त्रियों पर थोपे हैं, उतना शायद किसी और ने नहीं। आधुनिकता का दबाब स्त्री को बाजार के इशारे पर नचाने लगा है नये सौन्दर्यशास्त्र का सारा दामोदार 'रूप' पर है।

मुंशी प्रेमचंद हिन्दी साहित्य जगत के ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने समाज की वह प्रत्येक नब्ज टटोली थी, जहाँ पर बीमारी अपनी जड़ जमा रही थी। एक कुशल सामाजिक डॉक्टर की तरह बीमारी को समझने के साथ उसे दूर करने के नुस्खे भी समाज को दिये। 'हिन्दी उपन्यास साहित्य के संदर्भ में आलोच्य युग को 'प्रेमचंद युग' की संज्ञा लगभग निर्विवाद रूप में मिल चुकी है क्योंकि सेवासदन (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880–1936) के साहित्यिक जीवन की वरन हिन्दी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता प्रेमचंद अपने समकालीनों से इस मामले में बिल्कुल अलग दिखते हैं कि उन्होंने समाज के पिछले 500 सालों के अलिखित दस्तावेज को जो सिर्फ इतिहास रह गया था, अपने साहित्य के माध्यम से जनता के सम्मुख

निर्भीकता एवं बिना किसी लाग लपेट, पूर्वाग्रह के रखा। समाज की विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे निर्धनता, बेरोजगारी साम्प्रदायिक हिंसा, पिछड़ी जातियों की समस्या, महिलाओं के विरूद्व हिंसा, निरक्षरता, कृषक की गरीबी एवं ग्रस्तता, सामंतों, राजे, महाराजे एवं जमींदारों की निरंकुशता, मद्यपान और वेश्यावृत्ति पर गंभीर विचार कारण एवं निवारण सहित अपने सहित्य में स्थान दिया।

'युग–चेतना' का तात्पर्य अपने समय के यथार्थ की पहचान है। वर्तमान समय में नई स्थितियों के कारण स्वातंत्रयोत्तर भारत में कौन–कौन से नए मूल्य उभरे हैं, चिन्तन उभरा है, संबंध उभरे हैं और हमारे अनुभवों में कौन–कौन से नए आयाम जुड़े हैं तथा युगीन यथार्थ इनसे टकराकर कौन–सा नया रूप धारण कर रहा है। इन सबकी चेतना ही 'युग–चेतना' है।

आधुनिक काल में कहानियों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी अन्तर्निहित युग–चेतना है। यों तो हर युग में साहित्यकार अपनी समकालीन स्थितियों से संचालित होता है, परन्तु इस युग में यह चेतना अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आयी है। प्राचीन काल में कहानियाँ पौराणिक संदर्भों को लेकर लिखी जाती थीं, परन्तु आधुनिक काल में कहानी का कथानक समकालीन युग–चेतना के धरातल पर आधुनिक संदर्भों से जुड़ गया है। प्रेमचन्द युग में पहले–पहल युग–चेतना का साक्षात्कार होता है। प्रेमचन्द युग के उत्तरार्द्व या अन्तिम चरण में ही आदर्श की मनोरम कल्पना का कुहासा छटने लगा था। साहित्यकार युगीन यथार्थ की भूमि पर उतरने लगे थे। इसलिए हिन्दी कहानी में युगीन यथार्थ की चेतना की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। स्वतंत्रयोत्तर युग में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ की युगीन चेतना की व्यापक अनुभूतियों को एक नई दिशा मिली–''आज का कोई भी कहानीकार जीवन के यथार्थ को अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु उसे सही अभिव्यक्ति देने का प्रश्न जटिल है। जिन्दगी अनेक संदर्भों, स्थितियों और सीमाओं में सिमटी हुई दबती–उभरती आगे बढ़ रही है। परिवर्तन की गति का प्रभाव जिन्दगी के पूरे विस्तार पर पड़ रहा है।''

यह उपयोगितावादी संसार उसे ही इज्जत और सम्मान देता है जो उसके लिए लाभदायक होता है, जो उसके काम आता है। यह संसार ईश्वर की भी इसीलिए पूजा करता है क्योंकि उसे उम्मीद है कि ईश्वर उसकी कामनाओं की पूर्ति करता है। जिस दिन उसे पता चल जाए कि ईश्वर ऐसा कुछ नहीं करता तो वह उसे मानने से इंकार कर देगा। जबतक कोई पेड़ हरा–भरा, छायादार, फलदार रहता है। लोग उसके पास जाते हैं। उसकी छाया में शरण लेते हैं, उसकी पूजा करते हैं किन्तु ज्यूँही वह सूख जाता है, ठूँठ हो जाता है लोगों के लिए वह राह का रोड़ा बन जाता है। इसी प्रकार यह अवसरवादी संसार उर्जावान, शक्तिशाली व्यक्ति को ही पूछता है। वृद्ध व्यक्ति उसके लिए अनुपयोगी, फालतू और बेकार हो जाते हैं।

भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक मानदण्डों के मध्य स्त्री की स्थिति निचले पायदान पर रही है। 'हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश के दरवाजे बंद हैं तथा जो व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है उसे उसी में मरना होता है।'

इस प्रकार तथा कथित सैद्धान्तिक आधुनिकता के तत्वों को निरूपित करने वाले उपन्यास की अपेक्षा सामाजिक जीवन की विसंगतियों, संघर्षों के वास्तविक चित्रण वाले उपन्यास सफलतापूर्वक उभरे हैं। ऐसा नही कि इनमें प्रणय प्रसंग और काम–क्रीड़ा का अभाव है किन्तु वह लेखक का साध्य नही साधन है। यहां सभी अपनी अस्मिता को बचाने का संघर्ष करते

हैं, किन्तु परिस्थितियों से पलायित होकर नही, उद्देश्यहीन होकर नही। सोद्देश्य संघर्ष सर्वथा ही स्वागत योग्य होता है। "आधुनिक जीवन की विरूपताओं विसंगतियों एवं विभीषिकाओं को साठोत्तरी रचनाकारों ने वैयाक्तिक स्तर पर भोगा है और उसे कलागत निरपेक्षता एवं निर्ममता के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है। ये उपन्यास अपने प्रारम्भिक रोमानीपन, भावुकता, नैतिका, उपदेशवादिता आदि दूषणों को छोड़ते हुए यथार्थ के नये आयामों की सृष्टि में आगे बढ़ रहे हैं।" ऐसी रचनायें उन स्थितियों को हमारे समक्ष उजागर करते हुए और उन उलझनों के थपेड़ो के बीच हमें उत्तर आधुनिक बोध का मंत्र देकर जीवन के संघर्ष में उठकर खड़े होने तथा निर्भयता से स्थितियों का सामना करने के लिए प्रेरित करती हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उत्तर आधुनिक युग में उपन्यास मानव मन मस्तिष्क की मनःस्थितियों की गुत्थियों को सत्यता के साथ चित्रित करने में सक्षम हैं। परिवेश की सत्यता अनुभव का अपनापन एवं लेखकीय तटस्थता उनकी अपनी विशेषता है। उनकी कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, अन्तर्विरोधी, लालफीताशाही का घिनौना रूप, निम्नवर्गीय दलितों, शोषितों व उनका आर्थिक संघर्ष प्रामाणिकता के साथ चित्रित हुआ है। साथ ही अनिर्णयात्मक रूकी हुई स्थिति, स्त्री–पुरूष काम संबंध, महानगरीय जीवन बोध आदि को रेखांकन गहराई के साथ हुआ है। अतः वर्तमान का कथा साहित्य युगीन–चेतना के साथ कथ्य एवं शिल्प की चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान है। अर्थात् गिरिराज किशोर की कहानियों में, समाज और मनुष्य तथा व्यक्ति और प्रतिष्ठान के बदलते रिश्तों को प्रामाणिकता से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास–डॉ0 पारूकान्त देसाई–पृ0 464
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में युग–बोध डॉ0 लालसाहब सिंह ,पृ0–14
3. नदी फिर वह चली–हिमांशु श्रीवास्तव–पृ0 23
4. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास –डॉ0 पारूकान्त देसाई–पृ0 264
5. डॉ. रवि श्रीवास्तव उत्तर आधुनिकता विभ्रम और यथार्थ, 113
6. वागर्थ, (अंक 53) सन् 1999 पृ. 17
7. कसौटी–अंक–62 सन् 1999 पृ. 55
8. आजकल–अक्टूबर–सन् 2000 पृ. 05
9. मार्क्स एंगेल्स/क्लैक्टैट वर्क्स पृ. 487/488 जिल्द 6
10. नया ज्ञानोदय सं. रवीन्द्र कालिया, अंक 90 अगस्त 2010, पृ. 48

अन्य संदर्भ पुस्तकें

- हिंदी साहित्य का इतिहास, सम्पादक–डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स 1999
- सामाजिक समस्यायें, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशंस नई दिल्ली 1999
- देवीशंकर अवस्थी (1992,सम्पा0), *कहानी विविधा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- विवेकी सिंह, *19 कहानियाँ.* नंदकिशोर नवल (सम्पा0), कसौटी–15 समापन अंक, रेनबो पब्लि0,नोएडा
- देवीशंकर अवस्थी (1992,सम्पा0), *कहानी विविधा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

- विवेकी सिंह, *19 कहानियाँ.* नंदकिशोर नवल (सम्पा0), कसौटी–15 समापन अंक, रेनबो पब्लि0,नोएडा
- डॉ0 आनन्दप्रकाश (1997), *हिन्दी कहानी की विकास–प्रक्रिया* , लोकभारती, इलाहाबाद
- देवीशंकर अवस्थी (2002,सम्पा0), *नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति* , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- विजयदेवनारायण साही, लेख *'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस'*, छठवाँ दशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
- यथार्थ की यात्रा कथा वैचारिकी, श्री भालचन्द्र जोशी, अन्यथा, अंक 19
- 'रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार' आलेख डॉ. शिवकुमार मिश्र
- मेरे साक्षात्कार, किताबघर, श्री पूरनचन्द्र जोशी 1999
- चाँद की वर्तनी–राजेष जोषी,
- गिरीष मिश्र, बाजार, समाज और भूमण्डलीकरण वाक् त्रैमासिक अंक–2
- आनन्द हर्षुल, महानगर में गिलहरी (कहानी) अन्यथा, अंक 5
- उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, सुधीश पचौरी, पेरोडी और पेष्टीच,

Copyright © 2017, Jagpal Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.